IJIRSET
International Journal of Innovative Research in
SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

e-ISSN: 2319-8753 | p-ISSN: 2347-6710

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

Volume 11, Issue 10, October 2022

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 8.118

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed & Referred Journal)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110090|

देव भाषा संस्कृत और नैतिक मूल्य

संगीता रोहिला

सहायक आचार्य–हिन्दी

चूरू बालिका महाविद्यालय

चूरू (राजस्थान)

सारांश

भारतीय संस्कृति में संस्कृत भाषा मानव–समाज की अमूल्य निधि है। यह अनादि काल से शाश्वत प्रवाहमान धारा के रूप में अनवरत प्रवर्तित रही है। भारतीय इतिहास ही नही सम्पूर्ण विश्व का इतिहास इससे आबद्ध रहा है। इसके विशिष्ट महत्व को देखकर विश्वमानव आज भारतीय संस्कृति के प्रति नतमस्तक है।

संस्कृत भाषा में निहित **'संस्कृति'** में मानव समाज द्वारा अपने विकासकाल से अब तक जो समस्त आचार–व्यवहार ग्रहण किया गया है। उसकी ही समष्टि है। संस्कृति शब्द **'सम'** उपसर्ग पूर्वक **'कृ'** धातु क्तिन् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। यह परिष्कृत अथवा परिमार्जित करने के भाव का सूचक है। भारतीय संस्कृति लौकिक एवं पारलौकिक उद्देश्यों को लेकर चलती है। उसे न केवल आध्यात्मिक जीवन मूल्यों की दृष्टि से अपितु नैतिक जीवन–मूल्यों की दृष्टि से उतना ही मूल्यवान कहा जा सकता है। उसने जहां आत्मा, जीव, जगत, धर्म दर्शन आदि को वैचारिक चिन्तन से ओत–प्रोत किया हैं, वही विज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य, शिल्प, स्थापत्य आदि विविध क्षेत्रों में भी विश्व में छाप छोड़ी है।

संस्कृत भाषा उदात्त मूल्यों एवं आदर्शों की अनुप्रेरणा रही है, इस भाषा के संवाहक वैदिक मन्त्रदृष्टा _षि, महर्षि, मुनि तथा तपस्वी महापुरुष रहे हैं। उन्होंने श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने के महनीय प्रयास किये है।

यद्यपि वैज्ञानिक एवं व्यक्तिवादी ज्ञानोदय के आधुनिक काल में जीवन मूल्यों का स्वरूप तेजी से बदलने लगा है, फिर भी संस्कृत भाषा ने जिन जीवन–मूल्यों को शाश्वत रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया हैं वे आज भी सत्य की कसौटी पर खरें है। नैतिकतापूर्ण दृष्टि से जीवन–मूल्यों की समीक्षा की जाये तो अन्य संस्कृतियों के जीवन–मूल्यों की अपेक्षा निश्चित ही अधिक नैतिक एवं लोकोत्तर सिद्ध होगें।

मूल बिन्दु : मानव–समाज, नैतिकतापूर्ण, व्यक्ति निर्माण, वसुधैव कुटुम्बकम्

परिचय :

'वसुधैव कुटुम्बकम्' आज 21वीं शताब्दी में पूरे विश्व में ये भावना प्रबल रूप से विकसित हो रही है। मानव इतिहास के इन हजारों वर्षों में संसार के किसी भी देश या जाति विशेष में ज्ञान–विज्ञान, सामाजिक संगठन के रूप, धर्म, दर्शन कला और साहित्य में जो कुछ भी उपलब्धि हुई है, वही तो एक दृढ़ आधार बनकर अपनी समन्वयात्मिका शक्ति से मानव को विकास के पथ पर अग्रसर करती है और नई उद्भावनाओं के साथ नयें मार्गों से होकर उसे चलने के योग्य बनाती रही है।

व्यक्ति निर्माण व चरित्र निर्माण– हमारी संस्कृति मानव को पशुत्व से पृथक कर सच्चे अर्थों में मानव बनाती है। उसमें चरित्र को प्रधान स्थान दिया गया है। संस्कार चरित्र को सशक्त बनाते है तथा आश्रम धर्म चरित्र को नियन्त्रित करते है।

''आचार–विश्वास–विचार–भाव–
चरित्रनीत्यादि गुणाम् जनानाम्
उत्कर्षता चा॰त्र समष्टि भावैः
सुसंस्कृतिः सैव नु भारतीया।।''

भारतीय संस्कृति के कर्णधार महापुरुषों ने चरित्र के उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किये है– राम, कृष्ण, बुद्ध गौतम, महावीर ने **'स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन्'** की भावना भारतीय संस्कृति के कर्णधारों के इस चारित्रिक आदर्शवाद में समायी हुई है।

''आ तो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतो'' की भावना चरित्र को निःस्वार्थ बनाने में पूर्ण सक्षम कही जा सकती है। मुनि वेदव्यास ने शाश्वत सत्य को स्पष्ट किया है–

''आत्मा – नदी संयम – पुण्य – तीर्थो
सत्योदका शीलतय दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरू पाडु.पुत्र,
न वारिणा शुच्यति चान्तरात्मा।।''

नैतिक मूल्यों में तपोवन तपस्या और त्याग समाहित है भोग की अपेक्षा त्याग की महत्ता है।

ईशावास्योपनिषद में कहा कि–

''ईशावास्यमिदं सर्व यत्कि०चित् जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भु०जी थाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।''

''अर्थात यह सम्पर्ण दृश्यमान जगत् में जो कुछ भी विद्यमान है उस ईश्वर से व्याप्त है इसलिए इसका त्यागते हुए भोग करो। किसी के भी धन के प्रति लालच मत करें।'' भारतीय संस्कृति में त्याग शिक्षा में

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed & Referred Journal)
| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|
||Volume 11, Issue 10, October 2022||
| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110090|

समाहित है शिक्षा के लिए गृह सुविधाओं का त्याग कर गुरु गृह में ब्रह्मचर्याश्रम का पालन त्याग का प्रथम सोपान था वानप्रस्थ एवं संन्यास सांसारिकता के परित्याग के उत्तम उदाहरण थे। मनु ने लिखा था–

''त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्षे कुलं त्यजेव्।
देशस्यार्थे त्यजेद् ग्रामं विश्वर्थे तदपि त्यजेव्।।''

त्याग का परिवर्तित रूप तप हे जो कि समस्त सिद्धियों ऐहिक सफलताओं का मूल कारण है ज्ञान प्राप्ति के लिए तप की आवश्यकता बतलाते हुए मनुः में कहा है–

''तपोविशेषैर्विविधै र्व्रतैश्चविधिचोदितैः।
वेदः कृत्स्नो·धिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना।।''

अर्थात विशिष्ट तपश्चरण, अनेक प्रकार के व्रत आदि का विधिपूर्वक अनुष्ठान करके द्विज वेदांग सहित अधिगम करें।

तप को यज्ञ, व्रत एवं दीक्षा से जोड़कर जीवन के नियामक तत्वों में गृहीत किया गया था। उसे ब्रã प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन माना गया था।

उपनिषदों ने एक स्वर में कहा है–

''तपसा चीयते ब्रह्म''

धर्मप्रधान्य–

संस्कृत भाषा में निहित नैतिक मूल्यों में धर्म भारतीय संस्कृति का मूल मन्त्र हमारे जीवन की प्रत्येक दशा पर इसका प्रभाव साक्षात या परम्परा रूप से है। पशुओं से मानव को पृथक करने वाला धर्म ही है।

''आहारनिद्राभय मैथुनं च,
सामान्यमेतत्पशुभि र्नराणाम्।
धर्मों हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीनाः पशुभि समानाः।।''

धर्म हमारा प्राण है। पुरुषार्थ चतुष्टय में भी धर्म को प्राथमिकता पर रखा है, धर्म ही अर्थ एवं काम का नियमन करता है। प्राणियों को एकसूत्र में पिरोता है।

महर्षि कणाद के अनुसार–

''जिससें भौतिक अभ्युदय तथा पारलौकिक मोक्ष प्राप्त हो, वह धर्म है।''
''यतो·युदय निःश्रेयस सिद्धिः सः धर्मः।''

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110090|

संस्कृत में समाहित भारतीय संस्कृति की धर्म सहिष्णुता के कारण ही आज अनेक धर्मों का प्रचलन होने पर भी भारत में सांस्कृतिक एकता सुरक्षित एवं स्थायी बनी हुई है।

''सत्यमेव जयते नानृतम्'' सत्य की महत्ता नैतिक मूल्यों में सर्वग्राह्य है। ये हमारी संस्कृति का मूल आधार है सत्य की अवधारणा जहां मानव चरित्र को सुरक्षा प्रदान करती है वही समाज के संगठित स्वरूप को भी सुरक्षित रखने में सहायक होती है।

'सत्य' अर्थात कल्याण के लिए हितकारी जो वस्तु जिस प्रकार की तथा जिस रूप में हैं उसका वैसा ही कथन या प्रकाशन सत्य कहा जाता हैं। सत्य बोलने से मनुष्य निर्भीक बनता है उसका तेज, यश, कीर्ति, विद्या और गौरव बढ़ता है। सत्य भाषण जीवन का सर्वोतम तप है। **'सर्वम् सत्ये प्रतिष्ठितम्'।**

''अहिंसा परमो धर्मः'' सत्य के साथ अहिंसा मानव को मानव धर्म के प्रति अग्रसर करने में सर्वोपरि माना है मन, वाणी और कर्म से किसी को आघात न देना अंहिसा है। अंहिसा के कारण पशु भी मनुष्य से प्रेम करते है, शत्रु भी मित्र बन जाते है। मनुष्य की आत्मा अहिंसा से सुख का अनुभव करती है। भारतीय संस्कृति के प्रणेताओं में गौतम बुद्ध एवं महावीर स्वामी भी अहिंसा पूर्ण आचरण से सभी मानवों के पूजनीय बन गये।

''परोपकार'' भारतीय मानव परहित का आकांक्षी बने इस हेतु भारतीय महापुरुषों, ऋषियों, विद्वानों एवं कवियों ने परोपकार पर जोर दिया है, प्रकृति भी निःस्वार्थ भाव से देती है।

''पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः
धाराधरों वर्षति नात्महेतोः
परोपकाराय सतां विभूतयः
परोपकारः पुण्याय पापायः परपीडनम्।''

मातृपितृ गुरु भक्ति– संस्कृत भाषा में शिष्टाचार की महत्ता जीवन का सर्वाधिक आहार्य तत्व माना गया है। उपनिषदों में लिखा है–

''मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव।''

माता–पिता और गुरु के प्रति श्रद्धा भक्ति और उनके मार्ग–दर्शन में जीवन का समग्र उन्नयन है।

'कर्मवाद' संस्कृत भाषा में जगत में दिखाई देने वाली विषमता का कारण कर्मवाद, भाग्य और कर्म दोनों के प्रति पूर्ण विश्वास व्यक्त किया गया है, भाग्य यद्यपि अदृष्ट होता है।

भर्तृहरि ने लिखा है–

''भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम।
यद धात्रा लिखितं ललाटपटले तन्मार्जितुं कः क्षमः।।''

कर्मो का फल जन्म जन्मान्तर तक प्राप्त होता है। शुभ कर्म अच्छी योनि की प्राप्ति करवाते है वहीं अशुभ कर्म का प्रभाव से दुर्योनि प्राप्त होगी। संस्कृत भाषा में कर्मफल पर प्राणी का अधिकार स्वीकार नही किया गया है।

''कर्मण्येवाधिकारस्तु मा फलेषु कदाचन।''

भाग्य एवं कर्म का समन्वय ही यह सिद्ध करता है कि कर्म मृत्यु के बाद भी उसका पीछा नही छोड़ता है। अतः यह सिद्ध है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। समानता की भावना प्रत्येक प्राणी मात्र के प्रति हमारी संस्कृति में दिखाई देती है।

यथा–

''आत्मवत् सर्वभूतेषू यः पश्यति स पण्डितः।''

जो सभी प्राणियों में अपनी आत्मा के समान भावना देखता है वही पण्डित अर्थात बुद्धिमान है। आध्यात्मवादी होने के साथ आशावादी संस्कृति दिखाई देती है। विकट परिस्थितियों में भी मानव निराश होकर बैठ नहीं सकता है गीता में कहा है–

''परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।''

समन्वयवादिता– अनेक जातियां, अनेक धर्म, अनेक सम्प्रदाय, अनेक भाषा–बोलियां और अनेक वर्गो व वर्णो के मध्य अभूतपूर्व सम्वन्वय भारतीय संस्कृति में देखने को मिलता है। समन्वय के मूल में निहित समानता की भावना इस भावना का मूल वेदों में निहित हैं–

''समानी वः आकूतिः समाना ह्रदयानिवः,
समानमस्तु वो मनों यथा वः सुमहासति।
संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्,
देवाभागं यथा पूर्वे संजानानाः उपासते।।''

समन्वयवादी प्रकृति का ही परिणाम है कि इस संस्कृति में समन्वित पारिवारिक जीवन की कल्पना की गयी है तथा उसके लिए सामाजिक सौमनस्य की आहार्यता भी स्वीकार की गयी है।

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed & Referred Journal)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110090|

उपसंहार :

मानव अस्तित्व के समय से ही भारत भूमि सांस्कृतिक चेतना व्यावहारिक क्रियाशीलता की क्रीड़ा भूमि रही है जब संसार के अन्य भागों में संस्कृति के अंकुर फूटने वाले थे, उस समय भारत में एक विकसित नैतिक संस्कृति ने विश्व की अनेक संस्कृतियों को प्रभावित किया है भारत की सामाजिक संस्थाएं इसी प्राचीनता के योग से पल्लवित तथा पुष्पित हुई है।

प्राचीन नैतिक संस्कृति आकाश की भांति विशाल और सागर की भांति अपार है। यदि आज के इस युग में भारतीय संस्कृति की सम्भावनाओं पर विचार किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा की रक्षा नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित भारतीय संस्कृति ही कर सकती है। इसमें समाहित संस्कारों से मानव जीवन परिशुद्ध होता है। कर्मफल में अनाशक्ति का भाव मानव को स्वतः ही स्वार्थ से परे कर देता है। इसका व्यापक दृष्टिकोण विश्व बन्धुत्व की भावना को उजागर करता है।

''माता भूमिः पुत्रो·हं पृथिव्याः'' अर्थात मैं (मानव) पृथ्वी का पुत्र हूँ, पृथ्वी मेरी माता है। प्राचीन भारती संस्कृति के जीवन मूल्यों की नींव इतनी सुदृढ़ है कि उसके आश्रय से दिव्य जीवन की भी कल्पना की जाती है। यह दिव्य जीवन मुक्ति या मोक्ष यही जीवन का चरम लक्ष्य है।

सार रूप में यही कहा जा सकता है कि संस्कृति के जीवन मूल्य मानव जीवन कि व्यर्थता का पक्षपात न कर उसकी दुर्लभता का ही प्रतिपादन है। अतः दुर्लभ मानव जीवन के यथार्थ लक्ष्य की पूर्ति में नैतिक जीवन मूल्यों के योगदान का सहज अनुमान लगाया जा सकता है मानवोचित संतुलित जीवन भी मुख्य धुरी प्राचीन भारतीय संस्कृति का नैतिक आचरण है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. वैदिक साहित्य का इतिहास– श्री गजानन शास्त्री मुसलगांवकर
2. भारतीय संस्कृति का विकास– सत्य केतु विद्यालंकार
3. प्राचीन भारतीय संस्कृति– डॉ.एस.एल. नागोरी
4. शिक्षा एवं संस्कृति– श्री कन्हैयालाल माणोकलाल

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor
Impact Factor: 8.118

doi crossref

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

निस्केयर
NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

9940 572 462 6381 907 438 ijirset@gmail.com

www.ijirset.com

Scan to save the contact details